03 स्कूल–प्रधान : शैक्षणिक विद्वान या प्रशासक?

गुरुमूर्ति काशीनाथन

''बदलाव का सामना करने की, उससे सीखने की और विद्यार्थियों को उससे सीखने में मदद करने की शिक्षकों की क्षमताएँ भविष्य के समाजों के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित होंगी।''[1]

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप कार्यस्थलों के विस्तृत और जटिल होते जाने के साथ, फ्रेडरिक टेलर ने कर्मचारियों के एक नए वर्ग की कल्पना की जिसकी प्राथमिक जिम्मेदारी किसी भी जगह कार्यरत मनुष्यों (श्रमिकों) तथा भौतिक संसाधनों से अधिकतम उत्पादन हासिल करना थी। इससे 'वैज्ञानिक प्रबन्धन' का जन्म हुआ। उत्तरोत्तर, प्रबन्धन को ज्ञान और कार्यपद्धति का मिश्रण माना जाने लगा है, एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें योजना, संगठन, अधिकारियों की नियुक्ति, निदेशन और नियंत्रण शामिल रहते हैं।[2] अब ऐसे विशाल स्कूली तंत्र बन गए हैं, जो जटिलताओं से भरे हैं, जिनसे निपटने के लिए स्कूली और व्यवस्थागत, दोनों ही स्तरों पर भी प्रशासकीय या प्रबन्धन गतिविधियों में काफी ऊर्जा लगती है।[3] अतः ऐसा माना जाता है कि 'स्कूल के प्रधान' के पास ये प्रबन्धन कार्य करने के कौशल होना जरूरी हैं – स्कूली योजनाएँ कैसे बनाना, फिर उन्हें क्रियान्वित करने के लिए जरूरी संसाधन जुटाना, और फिर अगले सत्र के लिए क्रियान्वयन और प्रतिक्रियाओं का आकलन करना। इन कौशलों के समूह को 'शैक्षणिक' कार्यों जैसे बच्चों को पढ़ाना, सीखना, अध्यापन की तैयारी, शिक्षकों को सहयोग देने जैसे कार्यों से अलग एक पृथक विशेषज्ञता के रूप में देखा जाता है। कई स्कूलों को खराब प्रबन्धन के कारण परेशानी उठाना पड़ती है जिससे संस्था की कार्यकुशलता प्रभावित होती है। ठोस दीर्घकालिक व अल्पकालिक (वार्षिक) योजनाओं के अभाव में शिक्षकों की एकाग्रता और लक्ष्य प्रभावित होते हैं, खराब व्यवस्था से क्रियान्वयन प्रभावित होता है, कमजोर निगरानी व फीडबैक प्रणालियों का असर स्कूल का अपने ही कार्यों/अनुभवों से हासिल होने वाली सीखों पर पड़ता है जिससे फिर नियोजन प्रभावित होता है। अतः प्रत्येक स्कूल के पास एक अच्छा प्रबन्धक होना जरूरी है।

हम यह तो मानते हैं कि किसी भी स्कूल के संचालन में प्रबन्धन बहुत जरूरी होता है। पर यह अलग सवाल है कि क्या किसी स्कूल–प्रमुख के लिए ऐसा प्रबन्धक भर होना पर्याप्त है जिसे स्कूल के संचालन के शैक्षणिक पहलुओं में बहुत गहराई से भागीदार होने की जरूरत नहीं हो। जिस तरह एक शिक्षक कोई 'मामूली तकनीशियन'[4] नहीं होता जो कहीं और तैयार किए गए लक्ष्यों और पद्धतियों को लागू भर करता हो, उसी तरह एक स्कूल–प्रमुख की भूमिका सिर्फ स्कूल के बाहर तैयार कर ली गई योजनाओं को क्रियान्वित करने की नहीं होती। बल्कि स्कूल के सदस्यों के बीच स्कूल के उद्देश्य के बारे में एक साझा दृष्टिकोण विकसित करने की और उसकी प्राप्ति के लिए सबकी सामूहिक ऊर्जा को लगाने में मदद करने की होती है। स्कूल एक अनोखी सामाजिक संस्था होती है। यह सांस्कृतिक संसाधनों के पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरण के माध्यम से, भविष्य के स्वप्नों के लिए सर्वांगीण स्तर पर किए जाने वाले निदेशित किन्तु विकासपरक बदलाव का प्राथमिक उपकरण है। शैक्षणिक लक्ष्यों में ऐसे नागरिक तैयार करना शामिल होता है जो अपने अधिकारों व कर्तव्यों के प्रति सजग हों, और जो एक–दूसरे के तथा प्रकृति के साथ तालमेल के साथ रहें। स्कूल–प्रमुख को इस तरह के स्कूली दर्शन की गहरी समझ होना जरूरी है ताकि वह स्कूल की गतिविधियों की दिशा तय कर सके।

दूसरे, किसी भी स्कूल के लिए यह जरूरी है कि उसका अपने निकटतम लोगों व बृहद समाज के साथ गहरा नाता हो। हमारे स्कूल अकसर अपने परिवेश से काफी कटे से रहते हैं। यह एक प्रमुख कारण है कि कई बच्चे बीच में ही स्कूल छोड़ देते हैं क्योंकि उन्हें अपने जीवन में शिक्षा का कोई उपयोग नहीं दिखाई देता। आधुनिक समाज की जटिलताओं के चलते तो यह और भी जरूरी हो गया है कि स्कूलों को बृहद सामाजिक सन्दर्भ के साथ जोड़ा जाए। तीसरे, शिक्षा एक प्रायोगिक प्रक्रिया है और शिक्षक बच्चे को उसके दिमाग के भीतर ज्ञान का निर्माण करने में मदद करता है। चूँकि 'संस्कृति में समाहित करना' ऐसे ज्ञान–निर्माण का प्रमुख अंग होता है, अतः यह जरूरी है कि शिक्षक व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा

> *चूँकि 'संस्कृति में समाहित करना' ऐसे ज्ञान–निर्माण का प्रमुख अंग होता है, अतः यह जरूरी है कि शिक्षक व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा किसी नैतिक उद्देश्य और परिधि को स्पष्ट करे। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ सिखाना हो, तो यह आवश्यक है कि शिक्षक निरन्तर अपने आचरणों द्वारा उनका प्रदर्शन करे। इसलिए यह आवश्यक है कि स्कूली–प्रधान का आचरण शिक्षकों के लिए अनुकरणीय हो।*

किसी नैतिक उद्देश्य और परिधि को स्पष्ट करे। उदाहरण के लिए, यदि किसी बच्चे को लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ सिखाना हो, तो यह आवश्यक है कि शिक्षक निरन्तर अपने आचरणों द्वारा उनका प्रदर्शन करे इसलिए यह आवश्यक है कि स्कूली–प्रधान का आचरण शिक्षकों के लिए अनुकरणीय हो। इसलिए यह जरूरी है कि प्रत्येक स्कूली प्रमुख को शिक्षा के दर्शन, शिक्षा के समाजशास्त्र और शैक्षणिक मनोविज्ञान के 'बुनियादी क्षेत्रों' का अच्छा–खासा ज्ञान हो ताकि वह स्कूल की सोच को सार्थक रूप दे सके। यदि स्कूल–प्रमुख सिर्फ प्रबन्धक हो, और यह तमाम समझ दूसरों से प्राप्त करने की कोशिश करे, तो यह खतरा है कि प्रशासन से उपजने वाली प्राथमिकताएँ इन बुनियादी क्षेत्रों से निकलने वाले लक्ष्यों से कहीं ज्यादा महत्व न हासिल कर लें।

बुश और ग्लोवर, जिन्होंने शैक्षणिक नेतृत्व और प्रबन्धन की परिभाषाओं का अध्ययन किया है, कहते हैं: ''नेतृत्व अपने साथ के लोगों को प्रभावित करने की प्रक्रिया है जो वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर ले जाती है। सफल नायक व्यक्तिगत और व्यावसायिक मूल्यों के आधार पर अपने स्कूलों के लिए सोच विकसित कर लेते हैं। वे अपने दृष्टिकोण को हर मौके पर स्पष्ट करते हैं और अपने साथी कर्मचारियों व भागीदारों पर प्रभाव डालते हैं ताकि वे भी उनके इस दृष्टिकोण को अपनाएँ। स्कूल के दर्शन, उसके ढाँचे और उसके भागीदार इस साझा स्वप्न को पूरा करने के लिए तैयार रहते हैं।''[5]

'लीडिंग टीचिंग एण्ड लर्निंग इन द प्राइमरी स्कूल'[6] में रोज़मेरी वैब स्कूली नेतृत्व के तीन प्रतिरूप सुझाती हैं – शिक्षाप्रद नेतृत्व, निदेशात्मक नेतृत्व और शैक्षणिक नेतृत्व। जहाँ पहले, 'शिक्षाप्रद नायकों' ने खुद को अपने स्कूलों के भीतर नियमित अध्यापन में व्यस्त रखा, वहीं केन्द्रीकृत रणनीतियों (सरकारी योजनाएँ) के क्रियान्वयन से सम्बन्धित काम का कहीं अधिक बोझ होने के कारण अब यह मुमकिन नहीं है। 'निदेशात्मक नेतृत्व' का प्रतिरूप केन्द्रीकृत रणनीतियों के क्रियान्वयन पर ध्यान केन्द्रित करता है, ताकि पूर्व–निर्धारित मानदण्डों/मानकों की ओर जाया जा सके। परन्तु, वह ऐसा ''नैतिक उद्देश्य, सम्बन्ध–निर्माण और ज्ञान–रचना''[7] प्रदान नहीं कर पाता जो शैक्षणिक नेतृत्व शैक्षिक उद्देश्यों व सन्दर्भों की तथा अपने स्कूल की गहरी समझ विकसित पैदा करके प्रदान करता है। इससे उन्हें ''अपने स्कूलों के लक्ष्यों को हासिल करने के लिए मध्यमार्गी माँगों को अपनाने का या उन्हें मानने से मना कर देने का मौका मिल जाता है।''

> *शैक्षणिक संस्थाओं के परिवेश में, नेतृत्व का कहीं अधिक विचारशील, चिन्तनशील और ज्ञान–आधारित होना जरूरी है (शैक्षणिक उद्देश्यों और कार्यविधियों की गहरी साझा समझ ही एक साझे दृष्टिकोण का आधार बनाती है)। इसका अर्थ है कि स्कूली नेतृत्व को भी किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित होने के बजाय विकेन्द्रित और सहयोगपूर्ण होना चाहिए।*

ध्यान दें, कि व्यावसायिक प्रबन्धन के लिए 'साझा दृष्टिकोण' का विचार अपेक्षाकृत नया और अनूठा है; व्यावसायिक संगठनों के दृष्टिकोण आमतौर पर वरिष्ठ प्रबन्धकों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं जो प्रमुख रूप से शेयरधारकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं; इस सोच को आकार देने में उसके साधारण कर्मचारियों की भूमिका न के बराबर होती है। निदेशात्मक नेतृत्व केन्द्रीकृत सोच की इस व्यावसायिक प्रबन्धन पद्धति के समानान्तर ही चलता है। जबकि, शैक्षणिक संस्थाओं के परिवेश में, नेतृत्व का कहीं अधिक विचारशील, चिन्तनशील और ज्ञान–आधारित होना जरूरी है (शैक्षणिक उद्देश्यों और कार्यविधियों की गहरी साझा समझ ही एक साझे दृष्टिकोण का आधार बनाती है)। इसका अर्थ है कि स्कूली नेतृत्व को भी किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित होने के बजाय विकेन्द्रित और सहयोगपूर्ण होना चाहिए।[8] इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि स्कूली–प्रमुख को सभी विषयों या विषय–शाखाओं का विशेषज्ञ होना जरूरी है। हो सकता है कि यह एक व्यक्ति के लिए सम्भव न हो, पर आवश्यक यह है कि उसे बुनियादी क्षेत्रों की गहरी समझ होना चाहिए, जैसे शैक्षणिक उद्देश्य, समाज में तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में स्कूलों की भूमिका, और साथ ही किसी भी एक अध्ययन–शाखा का ज्ञान। इससे स्कूल–प्रमुख स्कूल की जरूरतों को समझ पाता है, व 'स्वप्न' और 'मौजूदा हकीकत' के बीच के 'सृजनशील तनाव'[9] को इस ढंग से थामे रख पाता है जिससे कि वह व्यक्तिगत रूप से सक्षम और कार्यकुशल रह सके और अपने स्वप्न को साकार करने के रास्ते में आने वाली समस्याओं को सुलझाने में अपने साथियों की मदद भी कर पाए।

भारत में अधिकांश विवेकाधीन व्यय/योजना निवेश केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं के माध्यम से होता है, जैसे डीपीईपी (जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम), एसएसए (सर्व शिक्षा अभियान)/आरएमएसए (राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान), मध्यान्ह भोजन आदि। इन योजनाओं के साथ बहुत विस्तृत व सख्त 'कायदे' जुड़े होते हैं, और स्कूल प्रमुख (और साथ ही राज्य, जिले, ब्लॉक और क्लस्टरों के प्रमुख भी) पूर्व–निर्धारित कार्यक्रमों को लागू करने वाले बन जाते हैं। दूसरे, भारत में राज्यों के अन्दर शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख आमतौर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा का कोई

अधिकारी होता है और अकसर ही वह शिक्षा–क्षेत्र का विशेषज्ञ नहीं होता। उसका ध्यान आमतौर पर गुणात्मक/मूल्यवान शैक्षिक लक्ष्यों की बजाय विस्तृत प्रशासनिक लक्ष्यों पर ज्यादा होता है। 'प्रबन्धन' पर बढ़ते जोर ने भी स्कूली प्रमुख की मुख्यतः एक प्रबन्धक होने की धारणा को बढ़ावा दिया है। इन कारकों ने सम्भवतः 'निदेशात्मक नेतृत्व' को भारतीय स्कूलों का कायदा बना दिया है। स्कूल प्रमुख रजिस्टर बनाए रखने, एमआईएस (मासिक आय योजनाएँ) के बारे में जानकारियाँ देने में व बीईओ (ब्लॉक शैक्षिक कार्यालय) और 'ऊपर के' अफसरों को ताजातरीन सूचनाएँ देने, निर्माण–कार्यों का निरीक्षण करने, मध्यान्ह–भोजन के प्रचालन तंत्र का प्रबन्ध करने, अनगिनत नियम–कायदों के अनुरूप क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने, लेखा–परीक्षणों का उत्तर देने, ब्लॉक स्तरीय सभाओं में भाग लेने इत्यादि कामों में ही लगा रहता है। उसके पास न तो अध्यापन (शिक्षाप्रद नेतृत्व) के लिए समय रह जाता है और न ही शिक्षक–सहायता प्रक्रियाओं में पूर्णरूपेण भागीदारी करने का व स्थानीय जरूरतों व बृहद शैक्षणिक लक्ष्यों पर आधारित कसौटियों को समझने का ही समय रहता है। और जाहिर है उसे न तो खुद अपने अध्ययन व समझ को बढ़ाने का समय मिलता है और न ही शैक्षणिक–प्रमुख के रूप में व्यावसायिक विकास के लिए ही समय मिल पाता है।

अन्य स्तरों पर नेतृत्व के लिए भी यह बात उतनी ही सच है। डाइट (जिला शिक्षा व प्रशिक्षण संस्थान) प्राचार्य या बीआरसी (ब्लॉक संसाधन केन्द्र) संयोजक मूल रूप से शैक्षिक नायक ही होते हैं। फिर भी, शिक्षण के लिए तमाम योग्यताएँ होने के बावजूद इनमें से कई का नियमित शैक्षिक कार्यों – अध्ययन, लेखन, समीक्षात्मक चिन्तन, चिन्तनशील व्यवहार, संवाद/तर्क–वितर्क आदि – से सम्बन्ध टूट जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता (एनपीई अर्थात राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने एक पृथक आईईएस यानी भारतीय शैक्षणिक सेवा काडर के माध्यम से इसकी माँग की है) न होने की वजह से कई स्कूल–प्रमुख स्कूलों व स्कूली व्यवस्था में ऐसी शैक्षिक संस्कृति की रचना को सहायता देने में असमर्थ हो जाते हैं। शिक्षा व्यवस्था एक अस्तित्वगत दुविधा में फँसी हुई है – क्या स्कूल और अन्य सहायक संस्थाएँ शैक्षणिक संस्थाएँ हैं जहाँ स्वायत्तता, शिक्षा को प्रमुखता, शैक्षणिक विशेषज्ञता, विचार–विमर्श और चिन्तन को जगह देना जरूरी होता है और दी जाती है; या, फिर वे कोई भी अन्य सरकारी विभाग जैसे हैं, जहाँ उनका प्रमुख उद्देश्य बस आज्ञापालन करना, सामान्यज्ञ (सभी पदों/परिस्थितियों के लिए एक ही व्यक्ति को उपयुक्त मानना) होना, आर्थिक लक्ष्यों व पूर्व–निर्धारित समय–सीमाओं को हासिल करना भर होता है। हालाँकि कर्नाटक जैसे राज्य में पृथक शैक्षणिक काडर (केईएस) है, लेकिन शैक्षणिक सहयोगकर्ताओं के पास निरन्तर सीखते रहने के लिए कोई ढाँचागत सम्भावनाएँ नहीं हैं। डाइट अपनी प्रमुख भूमिका एससीईआरटी (राज्य शैक्षणिक अनुसन्धान व प्रशिक्षण परिषद) में तैयार होने वाले प्रशिक्षण इकाइयों के 'कार्यक्रम क्रियान्वयक' के रूप में देखते हैं, न कि अपने शिक्षकों की ज्ञान–सम्बन्धी जरूरतों को आँकने व उसमें सहायता देने की सामूहिक जिम्मेदारी उठाने वाले शैक्षिक विभाग के अंग के रूप में।

शिक्षक की 'सरकारी सेवक' रूपी पहचान पर जोर देते हुए, स्कूल–प्रमुख और शिक्षा विभाग के अधिकारी इस समस्त व्यवस्था में शिक्षक के एक 'मामूली तकनीशियन' होने की धारणा को ही प्रचारित करते हैं। जिला/ब्लॉक स्तरों पर अनुभवी अधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे मुख्य रूप से केन्द्र व राज्य स्तर पर तैयार किए गए कायदों का पालन करें, बजाय इसके कि वे अपने साथियों के साथ स्थानीय कायदे तैयार करने में सहयोग दें। निदेशात्मक नेतृत्व में शैक्षिक पहलुओं पर दिए जाने वाले ध्यान का दायरा भी सीमित हो जाता है। पूरी कार्यपद्धति का इकलौता आधार सरकारी आदेश होते हैं, ऊपर की ओर होने वाली जवाबदेही बच्चों, पालकों और समुदाय के प्रति होने वाली जवाबदेही का व इस व्यवसाय की अपेक्षाओं का स्थान ले लेती है। यह प्रतिरूप स्कूलों को स्वायत्तशासी अध्ययन संस्थाएँ बनने से रोक देता है, जो कि शैक्षणिक उत्कृष्टता के लिए जरूरी है, भले ही निदेशात्मक नेतृत्व 'पर्याप्त अनुरूपता न होने' को 'शिक्षा के खराब स्तर' का कारण मानता हो। नीति (नीति शैक्षणिक सोच का दर्पण होती है) के स्तर पर, हम त्वरित और अक्सर असम्बद्ध बदलाव देखते हैं, जो कभी–कभी नेतृत्व में बदलाव और 'नीति उधार लेने' के रूप में दिखाई देता है, एक ऐसी कार्यप्रणाली जहाँ नीतियों को, बिना उनकी प्रासंगिकता समझे, अन्य स्थानों से उठाकर लागू कर दिया जाता है। शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर मूल्यवान वार्तालाप ('संवाद') किए जाने से 'नीति–व्यवहार' में सम्बन्ध वाले एक विकासमूलक प्रतिरूप को सुनिश्चित किया जा सकता है। कार्यक्षेत्र से प्रासंगिक व निरन्तर प्रतिपुष्टि (फीडबैक) के लिए व्यवस्था के भीतर विकेन्द्रीकरण और शैक्षिक पहलुओं को प्राथमिकता देना जरूरी है, जो कि निदेशात्मक नेतृत्व नहीं कर पाता।

दुर्भाग्यवश, हम उत्तरोत्तर निदेशात्मक नेतृत्व की तरफ बढ़ते प्रतीत हो रहे हैं। सर्वांगीण सुधार हेतु 'व्यावसायिक प्रबन्धन प्रतिरूपों' पर वर्तमान समय में दिया जाने वाला जोर, जिसमें आकलन–आधारित/मात्रा–आधारित कार्यक्रमों, 'दृष्टिकोणात्मक समस्याओं को सुलझाने हेतु व्यक्तित्वगत कौशलों (सॉफ्ट स्किल्स) के निर्माण' इत्यादि बातों पर जोर दिया जाता है, हमारी शिक्षा व्यवस्था के समक्ष खड़ी समस्याओं की गहरी शैक्षिक प्रकृति की उपेक्षा कर देता है। यह भी एक वैश्विक परिदृश्य है जहाँ नितान्त सार्वजनिक प्रकृति की समस्याओं को प्रबन्धन क्षेत्र के समाधानों, जो

सम्भवत : व्यावसायिक दुनिया में कारगर रहे हों, के द्वारा सुलझाने की कोशिश की जाती है। उदाहरण के लिए, हाल ही में, हर्स्ट पत्रिका की अध्यक्षा कैथलीन पी. ब्लैक को 'एक प्रबन्धक के रूप में उनकी असाधारण योग्यताओं'[10] और 'विपणन से जुड़े साहस' के फलस्वरूप न्यूयॉर्क सिटी स्कूल सिस्टम का नया चांसलर (कुलाधिपति) नियुक्त कर दिया गया। इस पर खेद व्यक्त करते हुए जिरू ने लिखा, ''इस दृष्टिकोण में, प्रबन्धन को किसी भी तरह के विकास की दृष्टि से अर्थपूर्ण नेतृत्व की धारणा से पृथक कर दिया जाता है और शिक्षा व सार्वजनिक हित के बीच के सम्बन्ध की जगह शिक्षा के व्यावसायिक प्रतिरूप को लागू कर दिया जाता है जो सामाजिक दृष्टिकोण को व ऐसे किसी भी दृष्टिकोण को खारिज कर देता है, जिसे सत्ता के सर्वथा अपरिष्कृत रूपों, उपकरणात्मक तर्काधार और गणितीय उपयोगिता द्वारा परिभाषित नहीं किया गया हो,... जो सार्वजनिक शिक्षा से सार्वजनिक मूल्यों, शासन के लोकतांत्रिक तरीकों, शिक्षक की स्वायत्तता, समीक्षात्मक सोच और स्कूली शिक्षा द्वारा बच्चों को समालोचनात्मक ढंग से सोचने वाले सक्रिय नागरिक बनाने वाली सोच के अवशेषों को भी निकाल कर बाहर कर देता है।''

आखिर में, प्रबन्धन और अकादमिक (शैक्षणिक) कोई 'यह या वह' वाला मुद्दा नहीं है, प्रबन्धकीय जिम्मेदारियाँ महत्वपूर्ण होती हैं और प्रबन्धकीय कौशल की स्कूल के नेतृत्व के लिए जरूरत होती है। परन्तु, अध्यापन और शिक्षक–सहयोग की पेचीदगियों की तुलना में यह बहुत मामूली बात है। किसी भी शैक्षणिक संगठन में, स्कूल प्रमुख द्वारा (सामूहिक रूप से) तैयार किए गए लक्ष्य स्कूल के साझे दृष्टिकोण को दर्शाते हैं, और प्रशासनिक कौशल भले ही कार्यकुशलता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो, पर वह अपने आप में स्कूल के उद्देश्य को प्रासंगिकता या अर्थ प्रदान नहीं करता। ऐसा 'शिक्षा–केन्द्रित नेतृत्व'[11] सतत व सहयोगपूर्ण तथा विशिष्ट व सर्वांगीण शिक्षा में जड़ें जमाए रहता है।

अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के 'शिक्षा प्रबन्धन' प्रकार्य के प्रमुख के रूप में, मैं सोचा करता था कि 'शिक्षा प्रबन्धन' विशेषज्ञों को शिक्षा की बहुत गहरी समझ होने की जरूरत नहीं है। मैं यह भी सोचता था कि उनके लिए प्रबन्धन औजारों या उपकरणों जैसे स्प्रैडशीटों (कार्य–विवरणिकाओं), जो जटिल नियोजन व निरीक्षण को आसान काम बना देती हैं, में विशेषज्ञता होना ही काफी है। किन्तु अब मैं शैक्षणिक नेतृत्व व प्रबन्धन (ईएलएम) को शिक्षा के उपक्षेत्र के रूप में परिभाषित करता हूँ, जो नेतृत्व व प्रबन्धन के सिद्धान्तों को शैक्षणिक लक्ष्यों व प्राथमिकताओं के आधार पर शैक्षणिक सन्दर्भों पर लागू करने की कोशिश करता है, जिसके लिए स्पष्ट शैक्षणिक दृष्टिकोण बहुत आवश्यक हैं।

मैं एक बार त्रिवेन्द्रम के एक बड़े सरकारी स्कूल में गया था, जिसमें दो प्रधानाध्यापक थे – जिनकी अलग–अलग शैक्षिक व प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ थीं। विश्वविद्यालयों के कुलपतियों व रजिस्ट्रारों की भूमिकाओं का स्वरूप भी अकसर इसी प्रकार का होता है, जहाँ रजिस्ट्रार प्रशासनिक पहलुओं का अधिकांश भार वहन करता है ताकि कुलपति शैक्षिक मामलों पर ध्यान दे सके। चूँकि, प्रशासनिक कार्यों का भार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है, अतः शिक्षण व्यवस्था में सहयोग देने के लिए समर्थ प्रशासनिक व्यक्ति/व्यक्तियों को शामिल तो किया जाना चाहिए लेकिन उनकी भूमिका शैक्षिक नेतृत्व–दाताओं को सहयोग देने वालों की होना चाहिए बजाय इसके कि स्कूल प्रमुख को एक प्रबन्धक भर बना दिया जाए। इसके लिए हम सबकी तरफ से कहीं अधिक प्रयास और प्रतिबद्धता की जरूरत पड़ेगी, चूँकि शिक्षा का वास्ता हमारी बच्चों की जिन्दगियों और उनके भविष्य से है, जो कि एक तरह से मानवता का भविष्य है, तो इसके लिए हमें कम से कम यह तो करना ही पड़ेगा।

Footnote

1. FULLAN, MICHAEL G. 1993. Change Forces: Probing the Depths of Educational Reform, cited in http://education.stateuniversity.com/ pages/2483/Teacher-Learning-Communities.html
2. From the popular primer on business management Koontz and O'Donnel. Essentials of Management, An international perspective.
3. I have treated these two terms as largely synonymous for the purpose of this article comprising of activities that lie outside academic activities that form the core of the education system.
4. "The transmission model of education coupled with the drive for increased efficiency tends to foster the view of the teacher as a minor technician within an industrial process" - Reason and teaching by Israel Scheffler
5. In Early and Weindling, D. "From management to leadership, a changing discourse"
6. Rosemary Webb 2005. Educational Management Administration and Leadership, SAGE
7. Fullan 2001
8. In institutions of higher education, like universities, leadership positions such as Head of Department are sometimes assumed on rotational basis by faculty of the same experience/position
9. Peter Senge, Fifth Discipline

10. Henry A. Giroux. Business Culture and the Death of Public Education: The Triumph of Management Over Leadership. http://www.truth-out.org/business-culture-and-death-public-education-the-triumph-management-over-leadership65083
11. Southwest 2003

References

- Early, P. and Weindling, D.(2004) "A changing discourse: from management to leadership"
- Fullan, Michael G.(1995) 'The evolution of change and the new work of the educational leader
- Koontz and Weihrich, Essentials of Management, An international perspective. Tata McGraw-Hill. 10th Edition
- Quinn, Cheri. L. et al., "Preparing new teachers for leadership roles"
- Senge Peter, The Fifth Discipline: the Art and Practice of the Learning Organization. New York, Doubleday
- Sergiovanni, T. "Leadership and learning"
- Webb, Rosemary. "Leading teaching and learning in the primary school"

गुरुमूर्ति काशीनाथन आईटी फॉर चेन्ज के संस्थापक व निदेशक तथा सैन्टर फॉर लीडरशिप एण्ड मैनेजमेंट इन पब्लिक सर्विसेज़ (सी–लैम्पस) के संस्थापक हैं। वे ईएलएम पाठ्यक्रम के लिए चलाए जा रहे टीआईएसएस के एमए शिक्षा कार्यक्रम में अतिथि अध्यापक हैं। वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में शैक्षणिक नेतृत्व व प्रबन्धन विषय के लिए सलाहकार रहे हैं और इसी भूमिका में उन्होंने पॉलिसी प्लानिंग यूनिट, जो फाउण्डेशन तथा कर्नाटक सरकार के शिक्षा विभाग के बीच एक सहकार्य है, में भी कार्य किया। उनसे Guru@ITforChange.net पर सम्पर्क किया जा सकता है।